Indian J. Soc. & Pol. 04(03):2017: 117-122 **ISSN: 2348-0084(PRINT)**
Special Print Issue 2017 **UGC Journal List No 47956**

सामाजिक बहिष्करण और स्थानिक अस्मिता के अंतर्सम्बंधों की समझ

चन्दन श्रीवास्तव[1]

[1]शोधार्थी, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, भारत

ABSTRACT

प्रस्तुत आलेख में सामाजिक बहिष्करण एवं स्थानिक अस्मिता के मध्य अंतर्सम्बधों को समझने का प्रयास किया गया है। आलेख में सामाजिक बहिष्करण के विभिन्न संकल्पनाओं के साथ–साथ उनके बदलते स्वरूपों की चर्चा की गयी है। साथ ही, स्थानिक अस्मिता में प्रयुक्त 'स्थान' शब्द को मुख्यतः एक भौगोलिक संप्रत्यय (ग्रामीण, नगरीय एवं उप–नगरीय क्षेत्र) के रूप में देखा गया है। आलेख के माध्यम से यह मन्तव्य प्रस्तुत किया गया है कि किसी व्यक्ति या समुदाय की 'स्थानिक अस्मिता' का उसके सामाजिक विकास से गहरा जुड़ाव है। यदि कोई व्यक्ति या समुदाय समाज के हाशिए पर है तो उसमें उसकी स्थानिक अस्मिता की भूमिका हो सकती है। अतः एक समावेशी समाज के निर्माण के लिए सामाजिक बहिष्करण के विविध स्वरूपों तथा स्थानिक अस्मिता के विभिन्न आयामों की समझ अपरिहार्य है।

***KEYWORDS** : सामाजिक बहिष्करण, स्थानिक अस्मिता, समाजीकरण, शिक्षा, समावेशीकरण*

सामाजिक बहिष्करण से सम्बंधित प्रमुख विमर्श अक्सर जाति या धर्म के इर्दगिर्द ही घूमते मिलते हैं। जबकि, इसके विभिन्न छवियों को समाज के अनेक स्वरूपों एवं गतिविधियों में देखा जा सकता है। साधारण अर्थ में, सामाजिक बहिष्करण को सामाजिक संसाधनो के प्रयोग से मनाही अथवा उसे प्राप्त करने के अवसरों की मनाही के तौर पर देखा जाता है। यह उल्लेखनीय है कि अवसरों की मनाही अथवा प्राप्ति का सम्बंध बहुत हद तक किसी व्यक्ति विशेष की भौगोलिक स्थिति पर भी निर्भर करताहै। अतः सामाजिक बहिष्करण के संदर्भ में व्यक्ति की 'स्थानिक' अस्मिता की भूमिका को समझना बहुत जरूरी है, जिसे अक्सर नज़रंदाज कर दिया जाता है। इसी बिन्दु को लेते हुए प्रस्तुत आलेख में,सामाजिक बहिष्करण को मूलतः स्थानिक अस्मिता के साथ जोड़कर समझने का प्रयास किया गया है।

'स्थानिक अस्मिता' से आशय है–कोई व्यक्ति जिस क्षेत्र, परिवेश या स्थान विशेष में रहता है, उसके निवास की स्थिति के कारण उसे मिलनेवाली 'सामाजिक पूँजी'। उदाहरण के तौर पर, एक व्यक्ति जिसका घर दिल्ली के चाणक्यपूरी इलाके (उच्च वर्गो का निवास क्षेत्र का उदाहरण) में है, तथा एक अन्य व्यक्ति जो जहाँगीरपूरी बस्ती (निम्न वर्गो का निवास क्षेत्र का उदाहरण) में रहता है, अमूमन दोनों के विषय में हमारी धारणाबहुत ही अलग–अलग होगी। यह स्पष्ट है कि इस तरह के धारणा निर्माण के पीछेदोनों व्यक्तियों के निवास स्थितिकी भूमिका है।सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया में यह देखा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने निवास की स्थिति को बेहतर बनाता जाता है, ताकि उसकी 'स्थानिक अस्मिता' सुदृढ़ हो सके। इसके उलट, सामाजिक बहिष्करण की प्रक्रिया में व्यक्ति के स्थानिक अस्मिता को सीमित एवं नियंत्रित कर दिया जाता है।

भारतीय संदर्भ में देखें तो यहाँ सामाजिक बहिष्करण की प्रक्रिया के खिलाफ एवं पक्ष, दोनों तरफ की शक्तियाँ विद्यमान हैं। जैसे–भारतीय संविधान ने अपनी उद्घोषणा (Preamble) में समानता पर विशेष बल देते हुये इसकी स्थापना को अपना मूल लक्ष्य माना है। मौलिक अधिकारों के माध्यम से संविधान में ऐसे प्रावधान किये गए हैं, जिससे सामाजिक असमानता का उन्मूलन प्रभावीढ़ंग से हो सके। देश का प्रत्येक व्यक्ति अथवा समुदाय अपनी सांस्कृतिक अस्मिता के संरक्षण के साथ–साथ समानता, स्वतंत्रता एवं समरसता को सहजता से अनुभव करे, इसकी विस्तृत संकल्पना भारतीय संविधान द्वारा की गयी है, जो एक प्रकार से सामाजिक बहिष्करण को पूर्णतः समाप्त करने के लक्ष्य को साधे है। परन्तु यदि वस्तुस्थिति को देखें तो भारत में सामाजिक बहिष्करण के खिलाफ संवैधानिक प्रावधानों, कानूनों एवं नीतियों की विशाल श्रृंखला होने के बावजूद सामाजिक असमानता एवं भेद–भाव को समाप्त करने के लक्ष्य से हम कोसों दूर हैं। इसके लिये अक्सर उनके प्रभावहीनएवं असफल क्रियान्वयन को दोष दिया जाता है। लेकिन, बात केवल क्रियान्वयन में दोष का नहीं है।

असमानता,सत्ता एवं सामाजिक बहिष्करण को लेकर राज्य के स्व–विचारों में ही कई अंतर्द्वन्द देखने को मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप, एक तरफ राज्य ने अपने संवैधानिक लक्ष्यों में असमानता के उन्मूलन को अपना परम लक्ष्य माना है, वहीं दूसरी तरफ अपने विभेदपूर्ण नीतियों के माध्यम से,स्वयं राज्य ही गरीबी, अशिक्षा, संसाधनों के प्रति असमान अवसर, लैंगिक व जातीय भेद–भाव को बढ़ावा दे रही है। वर्तमान परिदृश्य में सामाजिक बहिष्करण इतना विस्तृत हो चुका है कि उससे कई अन्य सामाजिक समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। आरक्षण की राजनीति हो अथवा नक्सलवाद की समस्या,

1:Corresponding Author

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण करें तो ये सभी समस्याएं सामाजिक बहिष्करण से ही जुड़ी हुई हैं। समाज के वर्चस्वशाली वर्गों ने इस प्रकार के सामाजिक बहिष्करण एवं असमानता को अपनी मौन स्वीकृति दे रखी है और सरकारी नीतियों व प्रावधानों के द्वारा इनका वैधीकरण (legitimization)भी हो रहा है। इस कारण, तमाम आधुनिक विकास के बावजूद, सामाजिक सोपान में शीर्ष एवं निचले पायदान के लोगों के बीच का फासला और बढ़ता जा रहा है, जिसे गहन विश्लेषण से ही समझा जा सकता है।

सामाजिक असमानता एवं बहिष्करण की संकल्पना को भारत में विभिन्न स्थानों अथवा क्षेत्रीय आधार पर विशेष रूप से देखा जा सकता है। ये असमानतायें कई स्तरों जैसे–राज्यों के मध्य अथवा ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों के मध्य या स्वयं एक ही क्षेत्र के दो भागों के मध्य विद्यमान हैं। अतः यह स्पष्ट है कि सामाजिक बहिष्करण के मूल घटकों में भौगोलिक 'स्थान' की एक अहम भूमिका है, जिनके अंतर्सम्बंधों को समझना आवश्यक है ताकि समावेशी समाज के निर्माण में आनेवाली बाधाओं को दूर किया जा सके। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत आलेख में सर्वप्रथम 'सामाजिक बहिष्करण' के विभिन्न स्वरूपों को समझने का प्रयास किया गया है। तत्पश्चात् स्थानिक अस्मिता के विभिन्न आयामों की चर्चा की गई है और अंत में सामाजिक बहिष्करण एवं स्थानिक अस्मिता के मध्य अंतर्सम्बंधों का विश्लेषण भारतीय संदर्भ में किया गया है।

सामाजिक बहिष्करणके विविध स्वरूप :

समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के अनुसार, सामाजिक बहिष्करण के कई संदर्भगत् अर्थ हो सकते हैं और इसे किसी एक मानदण्ड पर परिभाषित कर पाना काफी मुश्किल है। सरल अर्थ में, सामाजिक बहिष्करण को मूलतः सामाजिक उपेक्षा, शोषण, दमन व भेदभाव को प्रबल बनानेवाली प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है। यह प्रक्रिया किसी एक व्यक्ति, संस्कृति, समुदाय, सामाजिक संस्था अथवा राज्य से सम्बंधित नहीं है, बल्कि इसकी जड़े अचेतन रूप से समूचे समाज में व्याप्त है।

सामाजिक बहिष्करण ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समाज के किसी व्यक्ति,जाति,वर्ग, समुदाय अथवा सम्प्रदाय विशेष को सामाजिक संसाधनों तक पहुँच अथवा समान अवसरों की प्राप्ति से विमुख कर दिया जाता है। विमुखीकरण की इस प्रक्रिया को हम भारतीय वर्ण–व्यवस्था के संदर्भ में देख सकते हैं, जहाँ शुद्रों एवं अस्पृश्यों को वेदों के पाठ करने की प्रबल मनाही थी। साथ ही, उनकी सामाजिक स्थिति निम्नतर थी। उन्हें अपना व्यवसाय परिवर्तित करने की मनाही थी। साथ ही, सामाजिक नियमों एवं प्रथाओं ने उनके बहिष्करण को सामाजिक व्यवस्था का एक प्राकृतिक अंग बना दिया।

सामाजिक बहिष्करण की संकल्पना को क्षमताओं एवं अधिकारों के संदर्भ में भी समझना जरूरी है। किसी भी समाज की पूर्ण सदस्यता के लिये व्यक्ति,जाति अथवा समुदाय विशेष के क्षमताओं का पूर्ण विकास आवश्यक है। अतः किसी को अपनी क्षमताओं को पूर्ण विकसित करने से रोकना सामाजिक बहिष्करण का प्रतीक है। क्षमताओं के पूर्ण विकास को अवरूद्ध करना अर्थात् सामाजिक बहिष्करण के मार्ग को प्रशस्त करना है। आधुनिक भारतीय संदर्भ में देखें तो उपेक्षित व दलित समुदायों की शैक्षिक स्थिति अति दयनीय है। अपने शैक्षिक विकास के मार्ग के अवरूद्ध होने के कारण वे किसी कार्य विशेष की सीमा से बाहर हो जाते हैं। यहाँ गौर करनेवाली बात यह है कि उनके शैक्षिक विकास का मार्ग स्वतः अवरूद्ध नहीं होता, बल्कि उसके पीछे सामाजिक सत्ता से सम्बंधित वर्चस्वशाली वर्ग की सायास भूमिका होती है। लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी आत्म–कथा 'जूठन' में ऐसे कई संदर्भो का उल्लेख किया है, जहाँ उनके शैक्षिक क्षमताओं को अवरूद्ध करने की कोशिश अन्य वर्गों द्वारा की गयी।

सामाजिक बहिष्करण की संकल्पना को सामाजिक समावेशीकरण (Social Inclusion)की प्रक्रिया के विरोधात्मक व विलोमी स्वरूप में भी देखना आवश्यक है। सामाजिक बहिष्करण के अंतर्गत सिर्फ बहिष्कृतव्यक्ति, जाति व समुदाय ही नहीं आते हैं, बल्कि वे वर्ग/जाति या समुदाय भी इस प्रक्रिया के अभिन्न अंग है, जिनके वर्चस्वशाली व्यवहारों से बहिष्करण की प्रक्रिया को बल मिलता है। सामाजिक वर्चस्व की स्थापना में जातीय समीकरणों के साथ–साथ आर्थिक कारकों की भी विशेष भूमिका होती है। आर्थिक रूप से कमजोर समुदाय अथवा व्यक्ति विशेष, सामाजिक बहिष्करण का आसानी से शिकार बन जाता है।इसके साथ ही, सामाजिक द्वंद एवं अशांति के मूल में भी बहिष्करण की नीति को पाया जा सकता है। जातिगत आरक्षण के लिये आंदोलनो की श्रृंखला हो अथवा बाजारीकरण के खिलाफ किसान आंदोलनों की घटनायें, इन सभी के पीछे सामाजिक बहिष्करण एक प्रमुख कारक है। पिछड़ी जातियों/उपेक्षित समुदायों को अवसरों से दूर रखना अथवा आर्थिक लाभ के लिये किसानों का भूमिअधिग्रहण करना, इन सभी के द्वारा उपेक्षित समुदाय अथवा वर्ग की यथा स्थिति को बनाये रखने की प्रक्रिया चलती रहती है।

समाजिक बहिष्करण की प्रकिया को सापेक्षतामें देखना सबसे अहम है। क्योंकि, सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव के साथ–साथ सामाजिक बहिष्करण की प्रकृति एवं प्रक्रिया में भी अंतर आना स्वाभाविक है। इसलिए बहिष्करण को संदर्भो में समझना आवश्यक है। यह जरूरी नही कि किसी गांव में चल रही सामाजिक बहिष्करण की प्रक्रिया एवं एक नगर में व्याप्त बहिष्करण में समानता हो।साथ हीं, जो किसी समुदाय, जाति अथवा सम्प्रदाय के लिये बहिष्करण हो

सकता है, यह आवश्यक नहीं है कि अन्य समाज में उसे बहिष्करण माना जाये।

अपने सापेक्षप्रकृति के साथ–साथ सामाजिक बहिष्करण की प्रक्रिया सार्वभौमिक रूप में भी स्थापित है, ग्रामीण समाज हो या नगरीय व्यवस्था, सभी जगह इसका परिवर्तित स्वरूप विद्यमान है।कई स्थितियों में सामाजिक असमानता स्वयं को क्षेत्रीय अथवा स्थानिक असमानता के रूप में प्रस्तुत करती हैं। सामाजिक असमानता एवं संसाधनों के असमान वितरण को सरकारी दस्तावेजों में भौगोलिक असमानता के आधार पर उचित ठहराया जाता है। शिक्षा का प्रसार हो या स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता, इनके लिये भौगोलिक बाधाओं को जिम्मेदार ठहराकर सरकार अपने उत्तरदायित्व से बचने की कोशिश करतीहै। वस्तुतः 'स्थानिकता' के आधार पर सामाजिक बहिष्करण की प्रक्रिया को सरकारी तंत्र से विशेष समर्थन मिलता है। जहाँ एक तरफ, सरकार विशेष तौर पर शहरी विद्यालयों में संसाधनों की प्रचुरता पर बल देती है,वहीं एक ग्रामीण संसाधनविहीन विद्यालय के प्रति उपेक्षा का भाव अपनाती है। उच्च वर्ग के बच्चों के लिये विशेष रूप से खुले उत्कृष्ठ संसाधनोंवाले विद्यालयों में सर्वोतम योग्यता वाले शिक्षकों को नियुक्त किया जाता है, जबकि एक सामान्य ग्रामीण बच्चे को पढ़ाने के लिये अयोग्य एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति कर दी जाती है। इन सभी भेदपूर्ण व्यवस्थाओं में 'स्थान' का महत्त्व विशेष तौर से है क्योंकि स्थान के आधार पर ही अपेक्षित सुविधाओं की पूर्ति का निर्णय सत्ताधारी वर्ग द्वारा किया जाता है। इस तरह सामाजिक बहिष्करण के कई स्वरूप हैं।

स्थानिक अस्मिता के विभिन्न आयाम :

'स्थानिक अस्मिता' को परिभाषित करना काफी मुश्किल है क्योंकि इसमें प्रयुक्त दोनों शब्द 'स्थान' (Space) एवं अस्मिता (identity)का अलग–अलग संदर्भो में भिन्न अर्थ लिया जाता है। प्रस्तुत आलेख में 'स्थान' (Space)कोएक भौगोलिक तत्व के रूप में लिया गया है, जो विभिन्न प्रकार के मानव अधिवासों (Settlements)यथा–ग्रामीण, नगरीय व उपनगरीय के संदर्भ में व्याख्यायित है। अधिवास मूलतः एक भौगोलिक शब्द है, जो विभिन्न स्थानों के निवास प्रारूपों को दर्शाता है। आलेख में मुख्य रूप से अधिवासों के निवास–प्रारूप के संदर्भ में सामाजिक बहिष्करण की स्थिति को देखने का प्रयास किया गया है।

यहाँ, स्थानिक अस्मिता को व्यक्ति अथवा समुदाय के सामाजिक अस्मिता से जोड़कर देखा जा रहा है। क्योंकि, व्यक्ति या समुदाय की भौगोलिक स्थिति का उसके सामाजिक स्थिति के निर्धारण मेंमहत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भी स्थान की अपनी विशेषताएं होती हैं। एक अधिवासित स्थान का उदाहरण लें तो उस स्थान पर निवास करने वाली प्रमुख जाति या वर्ग की विशेषता को उस स्थान की विशेषता से जोड़ दिया जाता है, और कई स्थानों अथवा क्षेत्रों के नामों को इन्ही विशेषताओं के आधार पर सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है। लेकिन, स्थानों के नाम सिर्फ विशेषता ही नहीं बतलाते बल्कि सामाजिक बहिष्करण की सीमाओं को भी निर्धारित करते हैं। उदाहरणस्वरूप यदि बिहार या उत्तर प्रदेश के ग्रामीण इलाकों के अधिवासीय संरचना को देखें तो एक बड़े गांव में कई 'टोले' होते हैं–बाभन टोला, लाला–पट्टी, मलाहटोला इत्यादि। इन सभी टोलों के नाम से ही वहां निवास करने वाले समुदायों का पता चलता है।

स्थानिक अस्मिता का व्यक्ति अथवा समुदाय के सामाजिक प्रतिष्ठा, शांति, रोजगार के अवसर, आर्थिक विकास, शिक्षा की उपलब्धता इत्यादि पर गहरा असर पड़ता है। स्थानिक अस्मिताओं में अंतर्द्वन्द के परिणामस्वरूप कई ग्रामीण गुटों के बीच सामाजिक तनाव बनता रहता है, जो कभी–कभी उग्र हिंसा का रूप भी ले लेता है।राजनैतिक परिदृश्य में भी स्थानिक अस्मिता का विशेष महत्त्व बना रहता है। किसी भी क्षेत्र के राजनैतिक भविष्य को वहाँ के बाहुल्य मत वाले समुदाय द्वारा निर्धारत किया जाता है। कई बार जब एक से ज्यादा वर्चस्वशाली समुदाय होते हैं, तो स्थिति और गम्भीर हो जाती है। इस तरह, स्थानिक अस्मिताओं का विस्तृत सामाजिक मुल्य होता है। अतः 'स्थान' केवल एक भौगोलिक तत्व नहीं है, बल्कि उसके कई सामाजिक आयाम हैं। दो समुदायों या व्यक्तियों के बीच कितनी अंतःक्रिया हो सकती है, यह बहुत हद तक उनके स्थानिक अस्मिता पर निर्भर करता है। स्थान एक माध्यम का कार्य करता है, जिसके आधार पर एक व्यक्ति या समुदाय की गतिशीलता निर्धारित होती है।

उपरोक्त बिन्दुओं से यह निकलकर आता है कि किसी भी समुदाय या व्यक्ति के अनुभव में उसके स्थानिक अस्मिता की भूमिका अवश्य होती है। अनुभवों का निर्माण स्थान विशेष में स्थापित क्रियाओं एवं सम्बंधों के आधार पर होता है। जब हम स्थान को एक भौगोलिक दृष्टिकोण से देखते हैं तो यह एक निरपेक्ष इकाई के रूप में दिखाई देता है जिसका अपना एक परिवेश एवं स्थिति है। लेकिन, सामाजिक दृष्टिकोण से देखें तो 'स्थान' एक प्रबल सापेक्ष इकाई के तौर पर दिखता है, जिसके भौगोलिक वितरण में सामाजिक रीति–रिवाज, जाति व्यवस्था एवं जनांकिकी वर्चस्व विशेष महत्त्व रखते हैं।

सामाजिक बहिष्करण एवं स्थानिक अस्मिता का अंतर्सम्बंधित परिप्रेक्ष्य :

सामाजिक बहिष्करण एवं स्थानिक अस्मिता के मध्य जुड़ाव का विश्लेषण करने के उद्देश्य से आगे की चर्चा में मूलतः तीन प्रकार के अधिवास प्रारूपों– ग्रामीण, नगरीय एवं उपनगरीय को लिया गया है। प्रस्तुत आलेख में, इन

अधिवासों के प्रारूपों को उनके सामाजिक आयामों के अधार पर विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। अधिवासों के प्रस्तुत प्रारूप, लेखक के स्वयं के अनुभवों एवं अवलोकन पर आधारित हैं। अपने अनुभवों में हमने कई भौगोलिक इकाइयों जैसे नदी, तालाब, पहाड़, खेत आदि को देखा है, लेकिन सामाजिक अवरोधक (social Barriers) केरूप में इनके प्रयोग का विश्लेषण मुश्किल ही किया होगा, जिसे आगे के विश्लेषण में प्रस्तुत किया गया है।

सबसे पहले यदि ग्रामीण परिदृश्य की बात करें तो इसमें जाति व्यवस्था के कठोर स्वरूप की चर्चा हमेशा की जाती रही है। विभिन्न लेखकों उदाहरणतः ओमप्रकाश वाल्मीकि और कांचा इलैया ने अपने जीवन अनुभवों में ग्रामीण समाज में व्याप्त विभेदीकरण की प्रथा को गहनता से व्याख्यायित किया है। सामान्यतः, ग्रामीण समाज को अति संरचित एवं स्तरित (Hierarchical)माना जाता है। 'शुद्धता' की समाजशास्त्रीय अवधारणा के संदर्भ में, ग्रामीण सामाजिक संरचनाओं में मानवीय अधिवासों के प्रारूपों की विशेष स्थिति दृष्टिगत होती है, और गांव के वर्चस्वशाली वर्ग या समुदाय का इन अधिवासीय प्रारूपों के निर्माण में विशेष योगदान होता है।

आगे, दोग्रामीणअधिवासीय प्रारूपों की चर्चा की जा रही है। पहला ग्रामीण अधिवास प्रारूप कुछ रूपों में ओमप्रकाश 'वाल्मीकि' द्वारा रचित 'जूठन' के उस गांव से मिलता–जुलता है, जहाँ तालाब के एक तरफ 'तागा' लोग रहते हैं और दूसरी तरफ 'चुहड़े'।

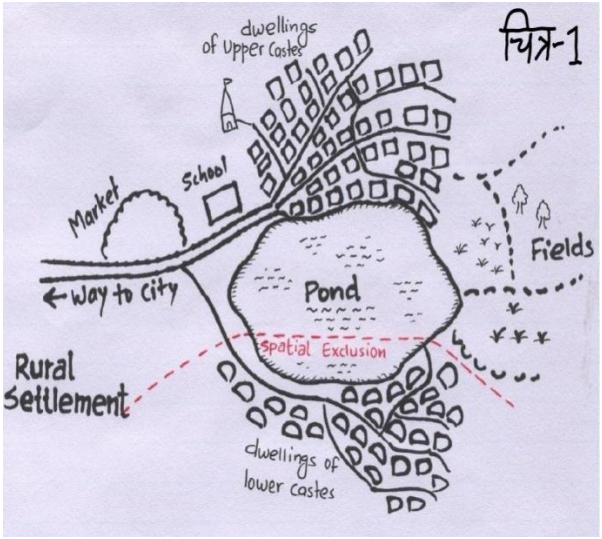

चित्र–1 में दिये गये ग्रामीण प्रारूप में सामाजिक बहिष्करणएवं विभेदीकरण के भौगोलिक वितरण को गहराई से देखा जा सकता है। सामान्य अधिवासीय प्रारूप प्रतीत होने वाले इस प्रारूप में जातिगत् सीमांकन एवं विभेदपूर्ण स्थिति को भौगोलिक अवरोधकों के माध्यम से निर्मित किया गया है। प्रारूप का मूल केन्द्र 'तालाब' एक विभाजक का कार्य कर रहा है, साथ ही दोनों तरफ के अधिवासों में अंतर को खेत–खलिहानों द्वारा बनाये रखने का प्रयास किया गया है। सड़क मार्गों को इस प्रकार बनाया गया है ताकि दोनों समुदायों के मध्य कम से कम सम्पर्क हो सके। गांव के सबसे वर्चस्वशाली समूह के इर्द–गिर्द ही अन्य संस्थायें जैंसे– पूजा स्थल, पंचायत–भवन, चौपाल, स्वास्थ्य केन्द्र आदि को स्थापित किया गया है। यहाँ यह स्पष्ट करना जरूरी है कि किसी स्थान के संदर्भ में वर्चस्वशाली या उच्च वर्ग का अर्थ केवल उच्च जाति नहीं है, बल्कि स्थिति अनुसार इसमें भी बदलाव आता रहता है। आंद्रे बेते ने अपने अध्ययन (Caste, Class and Power) में तंजौर के एक गांव का उल्लेख किया है, जहाँबहुसंख्या में रहने वाले अपेक्षतया 'निम्न' जाति के समुदाय का वर्चस्व था, न कि ब्राह्मण जैसी उच्च जाति का। हालांकि, चित्र–1 में जिस ग्रामीण संदर्भ को दिखाया गया है, उसमें यह प्रतीत होता है कि वहाँ जातिगत आधार पर स्थानिक अस्मिता को गढ़कर सामाजिक बहिष्करण की प्रक्रिया को स्वरूप दिया गया है। ऐसी स्थिति भारत के कई गांवों की हकीकत है।

ग्रामीण अधिवास का एक और प्रारूप चित्र–2 में दिया गया है, जिसमें सामाजिक विभेदीकरण एवं बहिष्करण की एक भिन्न भौगोलिक स्थिति दिखाई देती है।

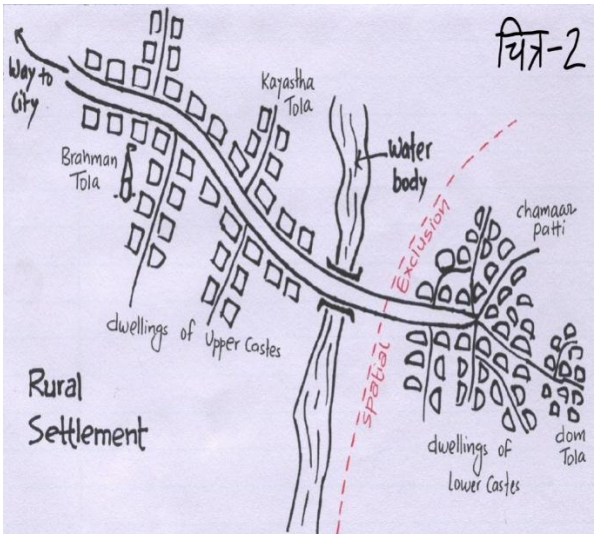

चित्र–2 में दिये गये प्रारूप के अंतर्गतग्रामीण अधिवास की ऐसी संरचना दिखाई देती है, जिसमें उपेक्षित जाति/समुदाय के निवास को पूर्णतः परिसीमित कर दिया गया है। इसमें, नहर एक भौगोलिक अवरोधक का कार्य कर रहा है ताकि निम्न जाति से सम्बंधित समुदायों के अधिवासों का प्रसार एक सीमा में ही हो सके। साथ ही, चित्र में यह भी देखने को मिलता है कि वर्चस्वशाली वर्ग की स्थिति शहर के समीप मुख्य मार्ग के साथ–साथ है, ताकि उन्हें शहर जाने के लिए निम्न जाति के क्षेत्र से नहीं गुजरना पड़े। वहीं, निम्न समुदाय के लोगों की शहरी गतिशीलता पर अंकुश रखने के लिहाज़ से भी यह एक प्रभावी स्थिति है। इस तरह, शुद्धता

के साथ–साथ यहाँ नियंत्रण की संकल्पना भी दृष्टिगोचर होती है। यहाँ सिर्फ दो ग्रामीण प्रारूपों की चर्चा की गई, लेकिन इनके अलावा भी तमाम ऐसे अधिवासीय प्रारूप मिलेंगे, जिनमें विभेदीकरण अपने अलग स्वरूप में प्रबल होगा, संसाधनों एवं अवसरों के तमाम क्षेत्रों पर उच्च वर्ग का वर्चस्व दिखेगा तथा सामाजिक बहिष्करण एक स्वीकार्य संकल्पना प्रतीत होगी।

सामाजिक बहिष्करण एवं विभेदीकरण की प्रक्रिया का एक अलग स्वरूप शहरों में भी देखने को मिलता है। गौर से देखें तो यहाँभी वही स्थिति है, सिर्फ स्थान एवं भौगोलिक अवरोधक बदल गए हैं।

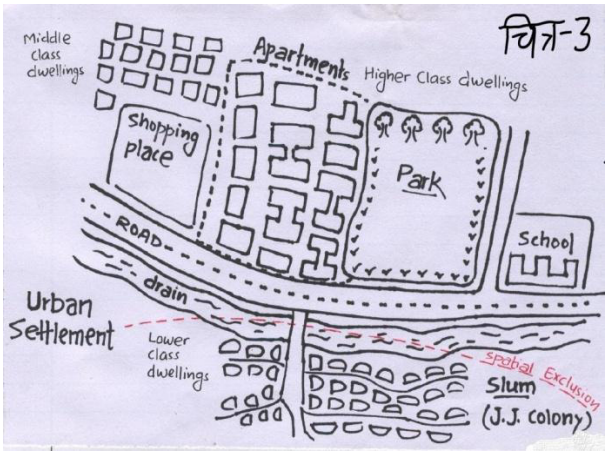

चित्र–3 में प्रस्तुत शहरी अधिवास के प्रारूप में सड़कों व नालों को भौगोलिक अवरोधक के रूप में देखा जा सकता है। दिल्ली शहर के अधिकतर झुग्गियों की स्थिति इस प्रारूप के जैसी ही है। विकसित नगरीय व्यवस्था में उपेक्षित निम्नवर्गीय अधिवासों जैसे– 'स्लम', झुग्गियों, चालों आदि की दयनीय व्यवस्था सामाजिक विभेदीकरण को दर्शाते हैं। किसी स्थान विशेष की स्थानिक अस्मिता का उसे उपलब्ध होनेवाले विकास अवसरों से सीधे सम्बंध का उदाहरण यहाँ स्पष्ट तौर पर मिलता है। जैसेकि,दिल्ली नगर विद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति, शिक्षण विषयों का निर्धारण, सुविधाओं की आपूर्ति आदि में बहुत गहरा क्षेत्रीय विभेद दृष्टिगत होता है। निम्नवर्गीय क्षेत्रों में विद्यालयों की स्थिति अति उपेक्षित है, वहीं पौश इलाकों में बहुत ही सुविधायुक्त विद्यालय विद्यमान हैं। निम्नवर्गीय क्षेत्रों के कई विद्यालयों में तो विद्यार्थियों के लिये सामान्य आवश्यकताएँ जैसे– कमरा, पेयजल, शौचालय आदि की भी उपयुक्त व्यवस्था नहीं है। साथ ही, यहाँ के विद्यालयों में विज्ञान एवं वाणिज्य आदि विषय के शिक्षक उच्चतर माध्यमिक स्तर पर उपलब्ध नहीं हैं। जिसके कारण, विद्यार्थियों के रूचि के बावजूद उन्हें इन विषयों को नहीं चुनने दिया जाता है, जो एक प्रकार से सामाजिक बहिष्करण का उदाहरण है। इस तरह नगरीय व्यवस्था में भी स्थानिक अस्मिता के आधार पर सामाजिक संसाधनों का असमान वितरण एवंकठोर नियंत्रण होता है।

उपनगरीय व्यवस्था में भी सामाजिक बहिष्करण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जिसका एक उदाहरण चित्र–4 में प्रस्तुत किया गया है। अक्सर, नगर के सीमांत क्षेत्रों में ऐसे निम्न वर्गीय अधिवासों का गहन बसाव होता है, जिन्हे एक तरफ तो नगरीय सेवाओं के लिये इस्तेमाल किया जाता है, वहीं दूसरी तरफ उन्हे नगरीय व्यवस्था से पृथक रखा जाता है। लगभग हर शहर से निकलने वाले मुख्य मार्गों पर बाहरी सीमांत पट्टी के आस–पास निम्न वर्गीय गहन आबादी मिलती है। शहर के मीलों व उद्योग क्षेत्रों में ऐसी आबादी का विशेष जमावड़ा होता है।

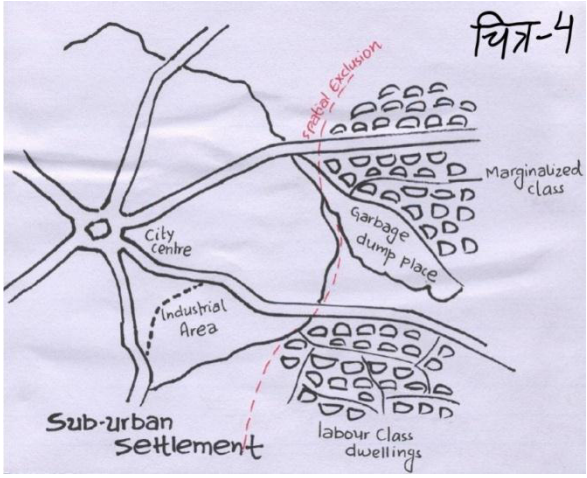

स्थानिक अस्मिता के निम्न होने के कारण, उपनगरीय व्यवस्था के इन अधिवासों में सामान्य सुविधाओं की स्थिति पूर्णतः उपेक्षित रहती है। चूंकि, ऐसे अधिवासों की स्थिति बहुत अस्थायी एवं पृथक होती है, अतः इनके विकास के प्रति कोई खास रूचि समाज में नहीं दिखती है। उप–नगरीय निवासों की स्थिति काम (रोजगार की प्राप्ति) के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। जिससे इनमें रहने वाले समुदायों के बच्चों का शैक्षिक भविष्य भी प्रभावित होता है। इस कारण, वे सामाजिक बहिष्करण के आसान शिकार बन जाते हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार सामाजिक बहिष्करण की प्रक्रिया एवं स्थानिक अस्मिता के मध्य गहरेअतर्सम्बंध दिखाई देतेहैं। इस आलेख में उन अंतर्सम्बंधों के कुछ पक्षों का विश्लेषण ही प्रस्तुत किया गया है, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक बहिष्करण मात्र अलगाव की प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह वर्चस्वशाली वर्ग द्वारा उपेक्षित वर्ग के ऊपर नियंत्रण साधने की प्रक्रिया भी है। जैसाकि विभिन्न प्रारूपों के माध्यम से दृष्टिगत हुआ कि भारतीय समाज में सामाजिक बहिष्करण के तत्व गहराई से विद्यमान हैं। अतः समावेशी समाज के निर्माण में यह एक बड़ी चुनौती है कि सामाजिक बहिष्करण के इन तत्वों से कैसे निपटा जाए। हम अक्सर शिक्षा को एक निरपेक्ष तत्व के रूप में सामाजिक गतिशीलता का प्रमुख

माध्यम मान लेते हैं, परन्तु उपरोक्त विश्लेषण से यह जाहिर होता है कि स्थानिक अस्मिता के हिसाब से शिक्षा की प्रकृति भी बदल जाती है। किसे कितनी और कैसी शिक्षा मिल सकती है, इसका निर्धारण बहुत हद तक स्थानिक अस्मिता पर आधारित है। हालांकि, किसी व्यक्ति या समुदाय की स्थानिक अस्मिता सदैव एक जैसी ही रहेगी, यह कहा नहीं जा सकता। इसलिए, सामाजिक बहिष्करण के तमाम प्रक्रियाओं के बावजूद स्थानिक अस्मिता की परिधि के बाहर जाकर अपना विकास करने की सम्भावना प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय में निहित है। आधुनिक समाज के कई उदाहरणों से ऐसा जाहिर भी होता है। फिर भी, सामाजिक बहिष्करण और स्थानिक अस्मिता के अंतर्सम्बंधों के प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता।

संदर्भ

चौहान, तेज सिंह (डॉ0) (1997). *भारत का भौतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं प्रादेशिक विकास.* जोधपुर : विज्ञान प्रकाशन।

Beteille, Andre (1996). *Caste Class and Power*. Bombay: Oxford Press.

Hasan, Zoya (2009). *Politics of Inclusion: Caste, Minorities and Affirmative Action*. New Delhi: Oxford University Press.

Husain, Majid (2000). *Human Geography*. New Delhi: Anmol Publication.

Orr, Shepley W. (2005). *Social Exclusion and the Theory of Equality: The Priority of Welfare and Fairness in Policy*. Londan: University College.

Thorat, Sukhadeo. *Caste, Social Exclusion and Poverty* Linkages– Concept, Measurement and Empirical Evidence. Online download http://www.scribd.com/doc/217909994/Sukhdeo-Thorat#scribd

Throat, Sukhadeo (2009). *Dalits in India: Search for a Common Identity*. New Delhi: Sage Publication.

Valmiki, O.P. (2007). *Joothan: A Dalitis life*. Samya Prakashan.

Whyte, R.O. (1982). *The Spatial Geography of Rural Economics*. Delhi: Oxford University Press.